जाति के परतों में उलझा मुस्लिम समाज: पसमांदा समुदायों के सामाजिक भेदभाव और वंचना का अध्ययन

डॉ शारीद जमाल अंसारी

शोध सार:

मुस्लिम धर्म को सामान्यतः समतावादी धर्म माना जाता है, इस्लाम धर्म का आधार समानता एवं धर्मप्रायणता है और वर्ण व्यवस्था के लिए कोई उचित स्थान नहीं है। लेकिन यह विचार अर्द्धसत्य है कि मुसलमानों में भी ऊँच-नीच एवं जातीय भेद–भाव एक सच्चाई है। सचर कमीटी ने तत्कालीन सरकार को रिपोर्ट पेश की उसमें उसने मुसलमानों के मध्य मौजूद तीन वर्ण अशराफ़, अज्लाफ़ और अर्ज़ाल का उल्लेख किया और ऐसा नहीं है की सचर कमीटी रिपोर्ट से पहले इन वर्णों का स्तित्व नहीं था। स्वतंत्रता से पूर्व गौस अंसारी, जनगणना रिपोर्ट 1901 इत्यादि तथा स्वतंत्रता के बाद योगेन्द्र सिकंद, अली अनवर, प्रो इम्तियाज़ अहमद तथा अली असगर इंजीनियर इत्यादि विद्वानों ने मुस्लिमो में जातिवाद की पुष्टि की है। रंगनाथ मिश्रा रिपोर्ट ने अनुसूचित जाति का दर्जा देने की भी कुछ मुस्लिम जातियों की सिफारिश की है। प्रस्तुत लेख इसी पर केन्द्रित है।

बीज शब्द: पसमांदा, अशराफ, अज्लाफ़, अरज़ाल, कुफ़ु, मसावात, मौलाना हमिदुद्दीन, ज़्यौद्दीन बर्नी, सय्यद अहमद ख़ाँ, सच्चर समिति और रंगनाथ मिश्र रिपोर्ट, पेशेवर, ।

जब-जब पसमांदा मुस्लिम समाज अपने अधिकारों या मुस्लिम समाज में प्रचलित जातीय भेदभाव के खिलाफ आवाज़ उठाता है, तब सबसे पहले अशराफ़ (स्वर्ण) वर्ग के कुछ लोग ही इन मांगों का खुलकर विरोध करने लगते हैं। वे बार-बार यही तर्क देते हैं कि "इस्लाम में कोई जाति-व्यवस्था नहीं है और सभी मुसलमानों को समान माना गया है।" ऐसे लोगों से हमारा सीधा सवाल है कि यदि मुस्लिम समाज में जाति या सामाजिक भेदभाव जैसी कोई व्यवस्था नहीं है, तो मुस्लिम OBC और दलित मुस्लिम जैसी श्रेणियों की आवश्यकता क्यों पड़ी और ये अवधारणाएँ अस्तित्व में कैसे आईं? सच्चर समिति ने भी अपनी रिपोर्ट में भारतीय मुस्लिम समाज के भीतर मौजूद विभिन्न सामाजिक वर्गों का उल्लेख किया है और यह बताया है कि भारतीय मुसलमानों में सामाजिक और जातीय विभाजन की वास्तविकता मौजूद है। इसलिए केवल धार्मिक सिद्धांत के आधार पर यह कहना कि मुस्लिम समाज में किसी प्रकार का जातीय या सामाजिक भेदभाव नहीं है, भारतीय मुस्लिम समाज की जमीनी हकीकत को पूरी तरह स्पष्ट नहीं करता। जस्टिस राजिंद्र सचर की अध्यक्षता में गठित सच्चर समिति मुस्लिम समाज में मौजूद सामाजिक स्तरिकरण पर बहुत विस्तार से चर्चा की है। समिति ने भारतीय मुस्लिम समाज में प्रचलित मुख्य तीन सामाजिक समूहों का उल्लेख किया है इसके अंतर्गत वह तीन समूह इस प्रकार हैं अशराफ़ (स्वर्ण) अजलाफ़ (पिछड़ा वर्ग) अरज़ाल (अति-पिछड़ा वर्ग/दलित मुस्लिम) 1

अशराफ़ वर्ग:

इसे मुसलिम समाज का 'स्वर्ण वर्ग' माना जाता है।

मूल: इसमें वह लोग शामिल हैं जो (अरबी, ईरानी, तुर्की, अफ़गानिस्तान या मध्य एशियाई) को अपना मूल वंशज मानते हैं (जैसे- सैयद, शेख, मुगल, पठान)। इसके अतिरिक्त, हिंदू समाज की उच्च जातियों (जैसे राजपूत) से धर्मांतरित हुए लोग भी इसमें शामिल किए जाते हैं। 2

अजलाफ़ वर्ग:

यह मुस्लिम समाज का 'पिछड़ा वर्ग' (OBC) है।

मूल: इसमें वह लोग आते हैं जो हिंदू समाज की निचली या मध्यवर्ती जातियों से इस्लाम में शामिल हुए थे। ये मुख्य रूप से पारंपरिक शिल्पकला, व्यापार और अन्य सेवा कार्यों से जुड़े हैं (जैसे- जुलाहा/अंसारी, दर्जी, कुंजड़े/राईन, धुनिया आदि)। 3

अरज़ाल (Arzal)

यह मुस्लिम समाज का 'अति-पिछड़ा या दलित वर्ग' है।

मूल: इस वर्ग में वह लोग शामिल हैं जिनका हिंदू समाज की अछूत या अनुसूचित जातियों (Dalits) से धर्मांतरित हुआ था। यह आज भी भँगी, हलालख़ोर, धोबी और लालबेगी जैसे हाथ से सफ़ाई करने वाले और चमड़े के पारंपरिक कार्यों में लगे हैं। इन्हें मुस्लिम समाज के भीतर भी अत्यधिक सामाजिक बहिष्कार और भेदभाव का सामना करना पड़ता है। 4

हम उन सभी लोगों की बात का सम्मान करते हैं, जो यह कहते हैं कि इस्लाम में किसी भी तरह का जातीय भेदभाव या ऊँच-नीच नहीं है।

लेकिन हमारा भी उनसे कहना है कि वह भारतीय मुस्लिम समाज में मौजूद सामाजिक वास्तविकता का सम्मान करें, जहाँ जातीय भेदभाव और ऊँच-नीच जैसी बातें आज भी किसी न किसी रूप में मौजूद हैं।

पवित्र कुरान के अध्ययन से इस विषय को समझने में हमें बहुत सहायता मिली और यह जानकर प्रसन्नता हुई कि इस्लाम में जाति या ऊँच-नीच के आधार पर किसी के साथ भेदभाव की कोई जगह नहीं है। इस बारे में किसी को भी संदेह नहीं होना चाहिए।

पवित्र कुरान स्पष्ट रूप से कहता है कि "पूरी मानव जाति एक ही पुरुष और एक महिला से पैदा हुई है। अलग-अलग परिवार, समुदाय और क़बीले केवल एक-दूसरे की पहचान के लिए हैं। किसी व्यक्ति की श्रेष्ठता उसके जन्म या जाति से तय नहीं होती, बल्कि उसके अच्छे गुण और अच्छे कर्म ही उसकी श्रेष्ठता का आधार हैं।" 5

पैगंबर मुहम्मद साहब ने भी इस बात पर ज़ोर देते हुए अपने अंतिम उपदेश (हज्जत-उल-विदा अर्थात अपने अंतिम हज) में समानता का संदेश दिया। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा कि "न किसी काले व्यक्ति को गोरे व्यक्ति पर श्रेष्ठता है और न गोरे को काले पर। इसी प्रकार न किसी अरब को ग़ैर-अरब पर श्रेष्ठता है और न ग़ैर-अरब को अरब पर। व्यक्ति की श्रेष्ठता उसके रंग, जाति, नस्ल या वंश से नहीं, बल्कि उसके अच्छे गुणों और कर्मों से तय होती है। इस" प्रकार पवित्र कुरान और हदीस की शिक्षाओं से स्पष्ट होता है कि इस्लाम में किसी व्यक्ति की श्रेष्ठता का आधार उसकी जाति, नस्ल या जन्म नहीं, बल्कि नेकी और धर्मपरायणता (तक़वा) है।

उन्होंने केवल समानता का संदेश ही नहीं दिया, बल्कि अपने अंतिम उपदेश में इस्लाम से पूर्व अर्थात जाहिलियत के काल के समय की बुराइयों और कुप्रथाओं का भी स्पष्ट रूप से विरोध किया। वह अपनी ऊँटनी पर सवार होकर दिए गए इस उपदेश में उन्होंने कहा:"सुन लो! जाहिलीयत (इस्लाम-पूर्व काल) के सभी रीति-रिवाज और व्यवस्थाएँ मेरे दोनों पैरों के नीचे कुचल दी गई हैं।" इस कथन के माध्यम से उन्होंने जाहिलीयत के समय में प्रचलित उन सामाजिक कुप्रथाओं और भेदभावपूर्ण व्यवस्थाओं को समाप्त करने की घोषणा की जो इस्लाम की समानता और न्याय की भावना के विरुद्ध थीं। 6

उपर्युक्त इस ऐतिहासिक उपदेश के अवसर पर पैगंबर मुहम्मद साहब रीति-रिवाजों और कुप्रथाओं को समाप्त करने की घोषणा की जो इस्लाम की समानता और न्याय की भावना के विरुद्ध थे और उसके स्थान लोगों को समानता का संदेश दिया और वंशवाद, रंग-भेद तथा समाज में ऊँच-नीच जैसी प्रथाओं का विरोध किया, जो जाहिलीयत काल में प्रचलित थीं। 7

खास बात यह है कि इसी अवसर पर पवित्र कुरान की वह आयत भी पैगंबर मुहम्मद साहब पर अवतरित हुई, जिसमें धर्म के पूर्ण होने की घोषणा की गई है। इसमें कहा गया है: "आज मैंने तुम्हारे लिए तुम्हारा धर्म पूरा कर दिया है।" 8

उपर्युक्त उपदेशों के अतिरिक्त पैग़म्बर मोहम्मद साहब ने अपनी पुत्री हज़रत फ़ातिमा और अपनी बुआ हज़रत सफ़िया को संबोधन करते हुए कहा यह हदीस सही बुख़ारी एवं मुस्लिम में उल्लिखित है:

"ऐ! फ़ातिमा, मुहम्मद की बेटी! मैं तुम्हें अल्लाह के क्रोध से नहीं बचा सकता। ऐ! सफ़िया, अल्लाह के रसूल की बुआ! मैं तुम्हें अल्लाह के क्रोध से नहीं बचा सकता। लेकिन, मेरे माल या धन में से जो चाहो मांग लो (लेकिन आखिरत न्याय के दिन), मैं अल्लाह के सामने तुम्हारे किसी काम नहीं आ सकता।" 9

उपर्युक्त उपदेश और हदीसें उस व्यक्ति के कथन हैं जिन्होंने इस्लाम का संदेश दिया। उनके कथनों, आचरण और शिक्षाओं के साथ-साथ पवित्र कुरान को इस्लाम के धार्मिक नियमों और सिद्धांतों का आधार माना गया है। इसके बावजूद बाद के दौर में कुछ लोगों ने अपने स्तर पर कई ऐसे नियम और धारणाएँ बना लीं जिनका स्पष्ट आधार मूल इस्लामी शिक्षाओं में नहीं मिलता। यह एक महत्वपूर्ण तथ्य है कि भारतीय उपमहाद्वीप के मुस्लिम समाज में जाति और ऊँच-नीच की भावना विभिन्न रूपों में आज भी दिखाई देती है। यह सामाजिक व्यवस्था इतनी गहराई से जड़ें जमा चुकी है कि इसकी वास्तविकता को केवल इस तर्क के आधार पर नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता कि इस्लाम समानता की शिक्षा देता है।

भारत में 95 प्रतिशत से अधिक मुसलमानों के पूर्वज इसी भूमि के मूल निवासी माने जाते हैं, जिन्होंने बाद में धर्म परिवर्तन के माध्यम से इस्लाम स्वीकार किया। इसके विपरीत, लगभग 5 प्रतिशत मुसलमानों को प्रवासी मूल का माना जाता है। 10 इतनी बड़ी संख्या में लोगों ने इस्लाम क्यों स्वीकार किया और इसके पीछे कौन-कौन से सामाजिक और ऐतिहासिक कारण थे, यह अपने आप में शोध का एक महत्वपूर्ण विषय है। विभिन्न विद्वानों और धर्मविदों के अनुसार, धर्म परिवर्तन करने वालों में बड़ी संख्या निम्न सामाजिक वर्गों, कामगारों और पारंपरिक पेशों से जुड़े समुदायों की थी। 11 सामाजिक बहिष्कार, ऊँच-नीच की भावना, सामाजिक उत्पीड़न और शोषण, सम्मान का अभाव तथा बुनियादी अधिकारों से वंचित होना धर्म परिवर्तन के प्रमुख कारणों में शामिल थे लेकिन इन परिस्थितियों में अनेक लोगों ने इस्लाम को अपनाकर सामाजिक सम्मान, समानता और अपने बुनियादी अधिकार प्राप्त करने का प्रयास किया। 12

चूंकि सनातन और वैदिक धर्म में जातियाँ पेशे के आधार पर तय होती थीं, इसलिए मुस्लिम समुदाय में भी यह व्यवस्थाएँ बनी रहीं। साथ ही भारतीय समाज में छोटे या निम्न समझे जाने वाले कामों से जुड़ा कलंक भी मुस्लिम समुदाय में ठीक वैसे ही आ गया जैसे उनमें था। बड़े पैमाने पर धर्म परिवर्तन के कारण ऐसा होना अपरिहार्य था। लेकिन दुख की बात यह है कि मुस्लिम मुल्ला-मौलवियों ने इस जाति व्यवस्था को धार्मिक (इस्लामी) मान्यता दी और इसे सामान्य बना दिया। ऐसा करते हुए उन्होंने पूरी समानता के उस सिद्धांत का पूरी तरह उल्लंघन किया जो पवित्र कुरान, पैगंबर मोहम्मद की सुन्नत एवं हदीस पर आधारित था। और इससे भी ज़्यादा दुख की बात यह है कि मुस्लिम समुदाय ने इन सभी गतिविधियों को बर्दाश्त किया।

शताब्दियों पहले मुस्लिम इतिहासकार ज़ियाउद्दीन बरनी ने मुस्लिम समाज में ऊँच-नीच और सामाजिक भेदभाव पर चर्चा की थी। अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'फ़तावा-ए-जहाँदारी' में उन्होंने विभिन्न सामाजिक समूहों के बीच ऊँच-नीच की धारणा का उल्लेख किया है। उन्होंने यह भी लिखा कि इस्लामी धार्मिक ग्रंथों के आधार पर यह निर्धारित किया जा सकता है कि किन जातियों को ऊँचा और किन्हें नीचा माना जाए।

"आदर एवं और सम्मान का अधिकार केवल अशराफ (स्वर्ण) लोगों को है। इसलिए अगर कोई व्यक्ति बहुत धर्मपरायण और नेक है, तो मान लिया जाएगा कि उसके पूर्वजों में जरूर अशराफ का खून रहा होगा। लेकिन अगर यह साबित हो जाए कि वह निम्न कुल का है, तो उसकी धार्मिकता और धर्मपरायणता केवल दिखावा मानी जाएगी। अगर अल्लाह की नज़र में खान, मिल्की या अमीर (मीज़ा) लोगों की तुलना में कसाई, जुलाहे और दुकानदारों के बेटों को अधिक सम्मान मिलता है, तो यह बहुत शर्म की बात है।" 13

बर्नी ने भारतीय मुसलमानों में नस्लवाद को भी बढ़ावा दिया उसने देशज समाज के मुसलमान को निम्न और नीच कहत है और बहुत घृणित वाक्य का प्रयोग करता है। वह अपनी पुस्तक में उपदेश संख्या 12 में लिखता है।

"मनुष्य के अच्छे और बुरे गुण पहले से ही निर्धारित होते हैं और वह उसके स्वभाव तथा व्यवहार में दिखाई देते हैं। मनुष्य के सभी कार्य पूर्वनिर्धारित होते हैं और ईश्वर की इच्छा से होते हैं। ईश्वर जिस व्यक्ति में अच्छाई या बुराई, पाप या पुण्य पैदा करता है, उसे उसी के अनुरूप अपने गुणों को प्रकट करने की क्षमता भी देता है।

यह गुण वंशानुगत होते हैं। उनके अनुसार, श्रेष्ठ गुण केवल अच्छे और सम्मानित वंश में ही पैदा होते हैं। इसलिए ऐसे लोगों को उच्च कुल का, कुलीन, स्वतंत्र जन्म वाला, नेक और धार्मिक माना जाता है। मुस्लिम शासन में महत्वपूर्ण पदों और जिम्मेदारियों के योग्य भी मुख्यतः यही लोग होते हैं।

इसके विपरीत ऐसे लोगों को आगे बढ़ाना ईश्वर की व्यवस्था के विरुद्ध है। निम्न समझे जाने वाले लोगों की मेहनत, चतुराई या योग्यता से प्रभावित नहीं होना चाहिए, क्योंकि उनके अच्छे गुण स्वाभाविक और वास्तविक नहीं, बल्कि दिखावटी होते हैं।" 14

बरनी की सोच यहीं तक सीमित नहीं थी। उन्होंने उन मुसलमानों के बारे में भी लिखा जिनके पूर्वज हिंदू समाज से धर्म परिवर्तन करके मुसलमान बने थे और जिनका संबंध निम्न सामाजिक वर्गों से था। बरनी ने ऐसे लोगों को शिक्षा से दूर रखने की बात कही और प्रशासन से भी इस दिशा में कदम उठाने का आग्रह किया। *फ़तावा-ए-जहाँदारी* को पढ़ने से यह पता चलता है कि बाद के दौर में सर सैयद अहमद ख़ाँ के विचारों में भी निम्न सामाजिक वर्गों से आने वाले मुसलमानों की शिक्षा को लेकर कुछ समानताएँ दिखाई देती हैं। दोनों के विचारों में इस बात पर ज़ोर मिलता है कि समाज में उच्च माने जाने वाले वर्गों को ही शिक्षा और प्रशासनिक अवसरों में प्राथमिकता मिलनी चाहिए। बरनी ने ऐसे मुसलमानों के संबंध में प्रशासन से आग्रह करते हुए लिखा है:

"सरकार को चाहिए कि वह निम्न वर्ग से आने वाले मुस्लिम लड़कों को शिक्षा पाने से रोके। जो व्यक्ति उन्हें शिक्षा देने की कोशिश करे, उसे सज़ा दी जाए और यहाँ तक कि उसे देश-निकाला या तड़ीपाड़ कर दिया जाए। बर्नी ने ऐसा इसलिए कहा था क्योंकि उसके अनुसार शिक्षा मिलने से निम्न वर्ग के लोगों को ऊँचे वर्ग के लोगों के बराबर आने का अवसर मिल जाता।" 15

इसके अलावा, भारतीय धर्मविदों में मौलवी अशरफ़ अली थानवी, मौलवी अहमद रज़ा ख़ाँ, सर सैय्यद अहमद ख़ाँ आदि ने अपनी पुस्तकों एवं लेखों में उपर्युक्त ज़ियाउद्दीन बरनी का अनुसरण किया है। इन लोगों ने देशज एवं पसमांदा मुसलमानों के लिए उसी शब्दावली का प्रयोग किया है, जो बरनी ने किया था।

अशरफ़ अली थानवी ने अपनी किताब '*बहिश्ती ज़ेवर*' और इसी तरह मौलवी अहमद रज़ा ख़ाँ बरेलवी ने अपनी किताब '*फ़तावा-ए-रज़विया*' आदि धार्मिक कृतियों में इस बात का वर्णन किया है कि शादी-ब्याह, विशेष रूप से बेटी की शादी के समय जाति (ऊँच-नीच) का कैसे पालन किया जाना चाहिए। इतना ही नहीं, इन किताबों में यह भी बताया गया है कि सैय्यद जाति का कोई व्यक्ति भले ही अनपढ़ और

मूर्ख हो, उसे जुलाहा (बुनकर) जाति के पढ़े-लिखे और समझदार व्यक्ति से बेहतर माना जाना चाहिए।

दुर्भाग्य से, इन सभी किताबों को आस्था और विश्वास के साथ घरों में रखा जाता है और धार्मिक संस्थानों में पढ़ाया भी जाता है। पसमांदा मुसलमानों का यह दुर्भाग्य है कि विशेष रूप से अशरफ़ अली थानवी की किताब '*बहिश्ती ज़ेवर*' को हर पसमांदा मुसलमान बड़ी आस्था के साथ पढ़ता और अपने घर में रखता है। आज भी मदरसों और संस्थानों में उपर्युक्त दोनों रूढ़िवादी मुल्लाओं की किताबों को पढ़ाया जाता है। साथ ही, धार्मिक मामलों में इन्हीं दोनों की किताबों से फ़तवे पेश किए जाते हैं। विशेष रूप से पसमांदा मुस्लिम समुदाय में इनका प्रचार-प्रसार किया जाता रहा है। लोग इन शिक्षाओं के आधार पर अपना आचरण करते हैं और दूसरों से भी ऐसा ही करवाते हैं।

हमारे मुल्ला और मौलवी, जिन्होंने इस्लाम का बुनियादी अध्ययन किया है, उन्होंने ऐसी किताबों को पूरी तरह से क्यों नहीं छोड़ा? यह सवाल अभी भी अनुत्तरित है। आंदोलन से जुड़े देशज मुसलमान या पसमांदा मुस्लिम कार्यकर्ता जिन लोगों को दलित मुस्लिम कहते हैं, उन्हें उत्तर भारत में अछूत तक माना जाता है। उनके साथ न केवल खान-पान और शादी-ब्याह पर रोक है, बल्कि कई मस्जिदों में उन्हें उच्च जाति के मुसलमानों के साथ एक ही कतार में खड़े होने की भी इजाज़त नहीं होती और उन्हें अलग कतार में खड़ा होना पड़ता है।

सर सैय्यद अहमद ख़ाँ को भी देशज मुसलमानों से बहुत अधिक चिढ़ और नफ़रत थी। भारत के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम, 1857 ई., में अंग्रेज़ों की विजय पर सर सैय्यद अहमद ख़ाँ ने स्वतंत्रता सेनानियों का बहुत अपमान किया था और अपने आक़ाओं, अंग्रेज़ों को प्रसन्न करने के लिए खुले आम जो अपमान किया, वह सदैव याद रखा जाएगा। उन्होंने अपनी किताब *असबाब-ए-बग़ावत-ए-हिंद* में स्वतंत्रता सेनानियों को बहुत बुरा-भला कहा है और उनके बारे में अभद्र भाषा का प्रयोग किया है।

"कारीगरों का रोज़गार ब्रिटानिया में बनी और प्रचलित व्यापारिक वस्तुओं की वजह से लगभग पूरी तरह समाप्त हो गया था। यहाँ तक कि भारत में सूई और दियासलाई बनाने वालों को भी कोई पूछने वाला नहीं रह गया था। जुलाहों का तो तार ही टूट गया था अर्थात धंधा बिल्कुल ही चौपट हो गया था। यह 'बदज़ात' लोग ही उस हंगामे में सबसे अधिक जोश से शामिल थे।" 16

उपर्युक्त अध्ययन और शोध से पता चलता है कि भारतीय मुस्लिम समाज में जात-पाति की जड़ें कितनी गहरी हैं। भारत में इस्लाम के धार्मिक अध्ययन से लेकर सामाजिक सुधार तक, विभिन्न स्तरों पर जाति और सामाजिक भेदभाव का उल्लेख मिलता है। ऐसा नहीं है कि इन बातों का कोई प्रमाण नहीं है। इनके समर्थन में ऐतिहासिक और धार्मिक लिखित प्रमाण भी मौजूद हैं। विडंबना यह है कि यही तथाकथित मुस्लिम समाज सुधारक हिंदू धर्म में मौजूद जात-पाति, ऊँच-नीच, भेदभाव और सामाजिक अन्याय के खिलाफ आवाज़ उठाते हुए दलितों की लड़ाई लड़ने से पीछे नहीं हटते। लेकिन जैसे ही मुस्लिम समाज में मौजूद इसी जात-पाति, ऊँच-नीच, भेदभाव और सामाजिक अन्याय के खिलाफ बोलने या लिखने की बात आती है, वह वही पुराना राग अलापने लगते हैं कि "इस्लाम में सभी समान हैं; कोई छोटा या बड़ा, उच्च या निम्न नहीं है।"

जब मौलाना हिफ़ज़ुर्रहमान सियोहारवी को पता चला कि बाबासाहेब भीमराव आंबेडकर हिंदू धर्म छोड़कर किसी अन्य धर्म को अपनाने पर विचार कर रहे हैं, तो उन्होंने उनके सामने इस्लाम को एक विकल्प के रूप में रखा। उन्होंने ज़ोर देकर कहा कि इस्लाम समानता पर आधारित धर्म है और इसमें किसी भी प्रकार की ऊँच-नीच की भावना को स्वीकार नहीं किया जाता।

इस पर बाबासाहेब ने कहा, "मैंने एक धर्म के रूप में इस्लाम का गहराई से अध्ययन किया है और मैं मानता हूँ कि इस्लाम मूल रूप से समानता पर आधारित धर्म है। लेकिन आपने भारतीय मुस्लिम समाज में मनुवादी जाति व्यवस्था बना रखी है, उसका क्या? यदि मैं इस्लाम अपनाता हूँ, तो आप मुझे किस जाति की श्रेणी में रखेंगे?" 17

प्रसिद्ध पत्रकार कँवल भारती के विचार भी इस मत से मेल खाते हैं कि भारतीय मुस्लिम समाज में जात-पात और ऊँच-नीच की भावना पाई जाती है और भारतीय मुसलमानों को सामाजिक दृष्टि से हिंदू समाज से पूरी तरह अलग नहीं माना जाना चाहिए। जहाँ तक इस्लाम में सामाजिक ऊँच-नीच का सवाल है, वहाँ इसका कोई स्पष्ट आधार नहीं मिलता। लेकिन मुस्लिम समाज की बात करें, तो उसमें ऊँच-नीच की भावना दिखाई देती है। कुछ लोग तो मुस्लिम और हिंदू समाज की सामाजिक संरचना को एक ही स्तर पर रखते हैं। कँवल भारती ने *नवभारत टाइम्स* के मार्च 1994 के अंक में लिखा है:

"हिंदू वर्ण सिस्टम का असर मुसलमानों पर भी पड़ा है। भारतीय मुसलमानों में एक जाति का दूसरी जाति के साथ रोटी का संबंध तो है लेकिन बेटी का नहीं।" 18

कँवल भारती ने नवभारत टाइम्स उपर्युक्त अंक में पसमांदा शोधार्थी स्वर्गीं श्री इक़्बाल अहमद अंसारी के एल भाषण का उल्लेख किया है:

"मुस्लिम समाज में भी एक वर्ण सिस्टम मौजूद है उसपर हमला क्यों नहीं किया जाता है। अगर हिंदू समाज के लिए ब्रहमणवाद हानिकारक

है तो मुस्लिम समाज में सय्यदवाद का वही हाल है। दोनों एक हैं इनमें कोई अंतर नहीं है"

जब मुस्लिम समाज में जात-पात के संदर्भ में रोटी और बेटी का विषय आ गया तो अब इस्लाम धर्म में मौजूद उस महत्त्वपूर्ण विषय 'कुफ़ू' की समिक्षा ज़रूरी है जिसको आधार बना कर भारत में मुसलमानों के अंदर जात-पात, ऊँच-नीच का बीज बोया गया है। 'कुफ़ू' का धार्मिक आधार क्या है इसको समझने के लिए इस्लाम को नहीं बल्की पैग़म्बर मोहम्मद साहब के बाद उन चार इमामों के विचार को समझना ज़रूरी है जिसे आधार बना कर सामाजिक स्तरीकरण एक ताना-बाना बुना गया है और धार्मिक शिक्षा दर्जा दिया गया। इस विषय पर मौलाना हज़रत अब्दुलहमीद नोमानी ने अपनी किताब *'मसला-ए-कुफ़ू और इशाअत-ए-इस्लाम'* और बड़े मौलाना हज़रत मौलाना हबीबुर्रहमान आज़ामी ने अपनी किताब *'अन्साब-ओ-कफ़ात का शरई हैसियत'* में इस विषय पर चर्चा की है।

कुफ़ू क्या है? साधारण भाषा में कुफ़ू को हम सगोत्र या सजातीय होने के अर्थ में समझ सकते हैं। कुफ़ू दो परिवारों के बीच सामाजिक बराबरी का एक पैमाना माना गया है। शादी-ब्याह के संबंध में इसी के नियमों को ध्यान में रखने की बात कही गई है। भारतीय मुसलमानों में जो लोग उच्च जाति से संबंध रखते हैं और स्वयं को अरब एवं मध्य एशिया से आया हुआ बताते हैं, उन्होंने सत्ता और समाज में अपने वर्चस्व को बनाए रखने के लिए इसी 'कुफ़ू' का सहारा लिया। इसके माध्यम से उन्होंने भारतीय पेशेवर और निम्न जाति के मुसलमानों के साथ भेदभाव किया। इन अशराफ़ मुसलमानों का साथ मदरसों के उन मुल्लाओं ने भी दिया जिन्होंने मदरसों में *दार-उल-इफ़्ता* की व्यवस्था बनाई। इसके माध्यम से मनुस्मृति के सिद्धांतों और नियमों की तरह एक अलग समानांतर मुस्लिम समाज खड़ा किया गया। इसमें जाति और बिरादरी के आधार पर विभिन्न श्रेणियाँ बनाई गईं तथा उन्हें उच्च, निम्न और पिछड़े वर्गों में बाँटा गया। इन जातियों की श्रेणी उनके पारंपरिक पेशों के आधार पर तय की गई और इन्हीं श्रेणियों को आधार बनाकर धार्मिक नियम और सिद्धांत बनाए गए कि कौन किसके साथ शादी-ब्याह कर सकता है और कौन नहीं। यहाँ तक कि कुछ मामलों में फ़तवे जारी करके शादीशुदा जोड़ों के निकाह को भी धर्म के आधार पर निरस्त कर दिया गया और उसे धार्मिक रूप से अवैध करार दिया गया।

कुफ़ू अर्थात सजातीय या सगोत्र के संदर्भ में, शमशुद्दीन अल-सर्ख़सी ने अपनी किताब *'अल-मबसूत'* के खंड पाँच के अल-निकाह अध्याय में कुफ़ू के बारे में चर्चा की है जो निम्नलिखित है:

"समगोत्र या समजातीय होना के मामलों में अधिक से अधिक नौ और कम से कम पाँच बातें मानी गई हैं। इनमें इस सवाल का संबंध सबसे अधिक इस्लाम, बिरादरी और पेशे से है, विशेष रूप से इस्लाम से चाहे वह प्राचीन या आधुनिक समय के संदर्भ में हो।

सगोत्रता या समजातियता के इन विषयों कि महत्ता को ध्यान में रखते हुए, सुविधा अनुसार इनका क्रम इस प्रकार होगा।

"1-आज़ादी, 2-धन-दौलत, 3-पेशा, 4-धार्मिकता और तक़्वा, 5-वंश, 6-इस्लाम कुछ धर्मविदों ने मेधा, पारिवारिक प्रतिष्ठा और दोषों से मुक्त होने को भी सगोत्र एवं सजातीय होने के मामलों में शामिल किया है। लेकिन अगर विचार किया जाए तो पारिवारिक प्रतिष्ठा को वंश के अंतर्गत रखा जा सकता है और मेधा को दोषों से मुक्त होने के अंतर्गत। चारों प्रमुख इमामों में से इमाम मालिक के अनुसार वास्तव में सगोत्र होने का संबंध धर्म, धर्मप्रायणता और दोषों से मुक्त होने से है। लेकिन इसके साथ वह कुछ हद तक धन-दौलत का भी ध्यान रखते हैं। हालाँकि यह उनका प्रसिद्ध मत नहीं है।

हनफ़ी विद्वानों के अनुसार ऊपर बताए गए सभी छह मामले सगोत्र एवं साजातीय होने में शामिल हैं।

इमाम शाफ़ई के अनुसार धार्मिकता और धन-दौलत सगोत्र होने के विषयों में शामिल नहीं हैं। इसलिए उनके अनुसार सजातीय होने के विषय चार हैं।

इमाम अहमद बिन हंबल धार्मिकता को इस्लाम में ही शामिल मानते हैं। इसलिए उनके अनुसार सगोत्र होने के मामले पाँच हैं।

उपर्युक्त वर्णित सभी सगोत्र या सजातीय होने के सभी विषयों में से भारतीय मुसलमानों के मध्य ऊँच-नीच, भेद-भाव का आधार बना वह तीसरा विषय 'पेशा' ही है।

तीसरी चीज़ पेशा है। इसके बारे में अनावश्यक रूप से बहुत कठोर व्यावहार किया गया है, विशेष रूप से भारत (अविभाजित भारत) और उसमें भी विशेष रूप से उत्तर भारत में। पेशे के आधार पर अशराफ और अज्लाफ का बाकायदा विभाजन हो चुका है। इसमें जहाँ आम लोगों और ज़मींदारी व्यवस्था की भूमिका रही है, वहीं कुछ मुफ़्तियों (धर्मविदों) के फ़त्वे और लेखों का भी बहुत बड़ा प्रभाव रहा है। इससे समानता की भावना और इस्लाम के व्यापार एवं पेशे से जुड़े विचार पर बहुत अधिक असर पड़ा है। भारत, पाकिस्तान और बांग्लादेश में धार्मिक

मत के अनुसार अधिकांश लोग इमाम अबू हनीफ़ा के अनुयायी हैं। इमाम-अबु-हनीफ़ा के सही मत के अनुसार सगोत्र या सजातीय होने में पेशे, हुनर और कारीगरी को आधार नहीं माना जाता।" 19

मौलाना अबदुल-हमीद नोमानी ने अपनी किताब *मसला-ए-कुफ़ू और इशाअत-ए-इस्लाम में इस्लाम* में गढ़े हुए धार्मिक तथ्यों का वर्णन किया है जिससे भारतीय मुसलमानों में होने वाले जातीय ऊँच-नीच और भेद-भाव का भली-भाँती पता चलता है। यहाँ उनकी किताब से एक अंश का यहाँ उल्लेख किया जा रहा है।

"इब्न नुजैम का कहना है कि कोई व्यक्ति अपना पेशा छोड़ सकता है, लेकिन उस पेशे की वजह से उसके साथ जो बदनामी या सामाजिक अपमान जुड़ गया है, उससे वह आसानी से छुटकारा नहीं पा सकता। इसलिए उसे किसी ऊँचे पेशे वाले व्यक्ति के बराबर का सगोत्र नहीं माना जाना चाहिए। अल्लामा शामी ने इस विचार को थोड़ा नरम करते हुए कहा है कि अगर किसी व्यक्ति को अपना पुराना पेशा छोड़े हुए इतना समय बीत जाए कि वह बात लोगों की याद और सोच से मिट जाए और उसके पुराने पेशे के कारण उसके प्रति घृणा की भावना भी न रहे, तो उसके साथ पेशे की वजह से जुड़ी हुई नीचता या हीनता को अब ध्यान में नहीं रखा जाना चाहिए।

इमाम अबू यूसुफ़ और बाद के कुछ मुफ़्तियों ने सगोत्र होने के मामले में पेशे को भी आधार माना है। ख़ास तौर पर कपड़ा बुनने वाले जोलाहे (जिन्हें अपमानजनक ढंग से 'जुलाहा' कहा जाता है), हज्जाम, दब्बाग़, चमड़ा रंगने वाले और दर्ज़ी जैसे पेशों को निम्न और अछुत समझा गया है। इसलिए कई फ़िक़्ह (इस्लामी धर्मशास्त्र) की किताबों में लिखा गया है कि कपड़ा बुनने वाला, हज्जाम आदि व्यक्ति कपड़ा और दवाइयाँ बेचने वाले जैसे ऊँचे पेशे वाले लोगों के बराबर का कुफ़ू (समान) नहीं होगा। और हनफ़िया के यहाँ इसी मत पर फ़तवा दिया गया है।" 20

"अत्तार या वैद्य का सगोत्र कपड़े की बुनाई करने वाला जुलाहा भी नहीं हो सकता। अलबत्ता कुछ धर्मविदों के विचार में अगर जुलाहा अगर अपना जुलाहागिरी छोड़ कर व्यावसायी बन जाए तो वह व्यवसायी का सगोत्र हो सकता है।" 21

अगर भारतीय उपमहाद्वीप के मुसलमान धर्म परिवर्तन से पहले हिंदू थे तो वह हिंदुओं से नफ़रत क्यों करते हैं? भारत में मुस्लिम शासन का एक अहम पहलू यह है कि जिन ख़ास हिंदू शासक परिवारों ने इस्लाम अपनाया उनका धर्म-परिवर्तन पूरी तरह से शत-प्रतीशत हुआ, क्योंकि यह बहुत सावधानी से किया गया था। लेकिन जिन शूद्रों और अति-शूद्रों ने इस्लाम अपनाया, उन्हें मुस्लिम धर्मगुरुओं और मुस्लिम शासकों ने नज़रअंदाज़ किया। इसलिए भले ही वह मुसलमान बन गए थे फिर भी वह पूर्ण रूप से इस्लाम के रंग में नहीं ढले और न ही समाज में पूरी तरह घुल-मिल पाए। आज भी कई मुसलमानों में हिंदू रीति-रिवाज देखने को मिलते हैं। इतना ही नहीं, कुछ वर्ष पूर्व तक वह अपने घरों में हिंदू देवी-देवताओं की मूर्तियां भी छिपाकर रखते थे। चूँकि यही वह बड़ा वर्ग था जिसमें बड़े पैमाने पर धर्म-परिवर्तन हुआ था हिंदू होने के दौरान हिंदू शासक वर्ग ने उनके साथ जैसा बर्ताव किया था, मुसलमान बनने के बाद वह अब उसका और भी आक्रामक तरीके से बदला ले रहे थे और यह प्रवृत्ति अभी भी उसी ज़ोर और शोर के साथ प्रचलन में है।

संदर्भ:

1- सच्चर कमेटी रिपोर्ट 2007
2- सच्चर कमेटी रिपोर्ट 2007
3- सच्चर कमेटी रिपोर्ट 2007
4- सच्चर कमेटी रिपोर्ट 2007
5- पवित्र कुरान 49:13
6- अबू-दाऊद, खंड-1 पृष्ठ – 263 एवं मुस्लिम, खंड-1 पृष्ठ 397, अध्याय हज्जत-उन-नबी
7- ख़ुत्बात-ए-हज्जत-उल-विदा, मोहम्मद महमूद नक़्शबंदी, पृष्ठ- 2
8- कुरान, सूरह अल-माइदा, 5:3
9- सहीह मुस्लिम, किताब-उल-ईमान, हदीस 206/ सहीह बुख़ारी, हदीस 2753
10- भारतीय मुसलमानों के हिंदू पुर्वज मुसलमान कैसे बने, पुरुषोत्तम, भुमिका
11- Caste and social stratification among Muslims in India Edited by Imtiyaz Ahamd, Page-13, 1940
12- भारतीय मुसलमानों के हिंदू पुर्वज मुसलमान कैसे बने, पुरुषोत्तम, भुमिका
13- मसला-ए-कुफ़ू और इशाअत-ए-इस्लाम, मौलाना अब्दुल-हमीद नोमानी, पृष्ठ-6, क़ाज़ी पब्लीशर्ज़ ऐंड डिस्ट्रीब्युटर्स, नई दिल्ली, 2002
14- मसला-ए-कुफ़ू और इशाअत-ए-इस्लाम, मौलाना अब्दुल-हमीद नोमानी, पृष्ठ-5, क़ाज़ी पब्लीशर्ज़ ऐंड डिस्ट्रीब्युटर्स, नई दिल्ली, 2002
15- मसला-ए-कुफ़ू और इशाअत-ए-इस्लाम, मौलाना अब्दुल-हमीद नोमानी, पृष्ठ-5, क़ाज़ी पब्लीशर्ज़ ऐंड डिस्ट्रीब्युटर्स, नई दिल्ली, 2002
16- रिसाला अस्बाब बग़ावत-ए-हिंद, अहमद ख़ान, पृष्ठ-36, मुफ़ीद-ए-आम, आगरा, 1903
17- संदर्भ: मसला-ए-कुफ़ू और इशाअत-ए-इस्लाम, मौलवी अब्दुलहमीद नोमानी
18- नवभारत टाइम्स, मार्च 1994
19- अल-मबसूत, शम्सुद्दीन अल-सरख़सी, खंड-5, अध्याय किताबुन्निकाह
20- फ़तावा-ए-आलमगीरी, खंड-1, अल-बहर-उल-राएक़, खंड-3, किताब-उन-निकाह
21- रद्दुल-मुख़्तार, खंड-2, अल-बहर-उल-राएक़, खंड-3, किताब-उन-निकाह